विश्वसनीयता त्यागकर बिकाऊ बनने की कोशिश

भारतीय मीडिया एक बार फिर अपने पाठकों और दर्शकों के कठघरे में खड़ी है। लोकसभा चुनाव के बाद बुद्धिजीवियों और मीडियाकर्मियों के बीच समाचारपत्रों और व्यावसायिक समाचार चैनलों की साख और सार्थकता को लेकर गहरी चिन्ताएँ व्यक्त की जा रही हैं। प्रेस परिषद तक पहुँची शिकायतों में ही नहीं, सार्वजनिक मंचों से मंत्रियों, मुख्यमंत्रियों तथा निर्वाचन में खड़े प्रत्याशियों ने यह आरोप दोहराया है कि मीडिया ने समाचारों को छापने और दिखाने के लिए फिरौती की तरह पैसे उगाहे हैं। राजनीति और प्रशासन से साठगाँठ का आरोप मीडिया पर पहली बार नहीं लगा है लेकिन खबरों को नीलाम करने और झूठ को सच बताकर बेचने का इतना बड़ा पर्दाफ़ाश पहली बार हुआ है। समाचारपत्रों और चैनलों ने अपने हर विरोध या आलोचना को अनदेखा करके खारिज़ कर दिया है। चुनाव परिणामों ने भी मीडिया की झूठी भविष्यवाणियों का सच उजागर कर दिया है। अपनी साख बेचकर अर्धसत्य फैलाने की प्रवृत्ति पश्चिम मीडिया से ही पूरी दुनियाँ में फैल रही है। इतिहास साक्षी है कि वर्ष 2003 में जब अमेरिका और ब्रिटेन की फौजों ने इराक पर आक्रमण किया था तो उनके साथ एक हजार से अधिक खरीदे गए पत्रकार भी थे। इनमें सी.एन.एन., ए.बी.सी., एन.बी.सी. और बी.बी.सी. जैसे चैनलों में कार्यरत लोग भी थे। इन मीडियाकर्मियों ने जो नकली विजयगाथाएँ प्रचलित की थीं उसने लोकतंत्र की मर्यादा, प्रेस की स्वतंत्रता, समाचारों की पवित्रता जैसे मिथकों का मुखौटा नोच कर अलग कर दिया था। सत्ता की सरपरस्ती और भरपूर कीमत के सामने मीडिया की नैतिकता कितनी विद्रूप हो सकती है, उस समय इसका प्रमाण मिल गया था। इस बार भारतीय मीडिया के एक वर्ग ने भी लोकतंत्र को इसी तरह शर्मसार किया है।

यह निर्विवाद है कि औद्योगिक क्रांति के बाद ब्रिटेन में जिस प्रेस का जन्म हुआ था उसने भारत सहित पूरी दुनिया के राजनीतिक, आर्थिक और बौद्धिक आन्दोलनों को बल प्रदान किया था, सामन्तवाद और साम्राज्यवाद से संघर्ष करने वाले देशों के जन आन्दोलनों की रूपरेखा प्रस्तुत की थी। विज्ञान और उपग्रह संचार से पैदा हुई प्रौद्योगिकी ने जहाँ भौगोलिक दूरियाँ मिटाकर सूचना और ज्ञान के नए क्षितिज खोले हैं वहीं राजनीतिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक और संचार माध्यमों की सोच को भी अर्थकेन्द्रित कर दिया है। समाज में बढ़ती लोकप्रियता के कारण जहाँ मीडिया ने पूरी दुनिया की आलोचना करने को अघोषित अधिकार हथिया लिया वहीं उसकी लोकपक्षधरता और नैतिक मूल्यों में गिरावट आई है। लोकतंत्र के लिए केवल स्वतंत्र मीडिया की अनिवार्यता की माँग करने वाले समूहों ने लोकतांत्रिक मूल्यों तथा नागरिकों के अधिकारों के स्थान पर उपभोक्ताओं के साथ प्रतिबद्धता निभाई है। प्रौद्योगिकी के इसी खतरनाक भौतिक संस्कृति की ओर 'रेमंड विलियम्स' ने अपनी पुस्तक 'लांग रिवोल्यूशन' में इशारा किया था। द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात लोकतंत्र, विकास और वैकल्पिक राजनीतिक विचाराधाराओं पर बहस करने वाली मीडिया कारपोरेट घराने में कैद हो गई। 1980 में 'यूनेस्को' ने अपनी एक रपट में कहा था कि 'संचार माध्यमों की विषय वस्तु राष्ट्र के विकास को ध्यान में रखते हुए देश और समाज की भाषा और संस्कृति के अनुरूप होनी चाहिए। संचालकों का हित उसका लक्ष्य नहीं होना चाहिए।' लेकिन ऐसी रपटों, अदालतों के फैसलों को कूड़ेदान में डालते हुए संचार माध्यमों विशेषकर मीडिया ने शिक्षा, संस्कृति और मनोरंजन के नाम पर अमेरिकी और यूरोपीय जीवनशैली की विकृतियों को थोपना शुरू कर दिया है। विदेशी पूँजी, अनियंत्रित अधिकार और अकूत मुनाफे की हवस ने मुख्यधारा की भारतीय मीडिया को ऐसे मोड़ पर पहुँचा दिया है, जहाँ उसे उन्हीं देशों, संस्थानो और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की गुलामी करने की विवशता है जो पूरी दुनिया को आर्थिक गुलामी में धकेलने की साज़िश कर रही हैं। कुछ अपवाद छोड़ दें तो भारतीय मीडिया का एक चरित्र तो 1975 में उसी समय उजागर हो गया था जिस समय इमरजेंसी के नाम पर नागरिक अधिकारों और प्रेस की स्वतंत्रता पर प्रतिबन्ध लगाया गया था। प्रतिरोध की ताकत जगाने के स्थान पर मीडिया ने सत्ता के सामने आत्मसमर्पण किया था। सत्ता संस्थानों के सामने समर्पण की वही मुद्रा आज तक बरकरार है।

नौ नवम्बर, 1913 को अपने पत्र 'प्रताप' के प्रथम अंक में उसके संस्थापक गणेशशंकर विद्यार्थी ने अपने संपादकीय आदर्श की घोषणा की थी। ''सत्य को दबाना हम महापाप समझेंगे और उसके प्रचार और प्रकाश को महापुण्य। हम जानते हैं कि हमें इस काम में बड़ी-बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा और इसके लिए बड़े भारी साहस और आत्मबल की आवश्यकता है। जिस दिन हमारी आत्मा ऐसी हो जाए कि हम अपने प्यारे आदर्श से डिग जाएँ, जानबूझकर असत्य के पक्षपाती बनने की बेशर्मी करें और उदारता, स्वतंत्रता और निष्पक्षता को छोड़ देने की भीरुता दिखाएँ, वह दिन हमारे जीवन का सबसे अभागा दिन होगा और हम चाहते हैं कि हमारी उस नैतिक मृत्यु के साथ-साथ हमारे जीवन का भी अन्त हो जाए।'' श्री गणेशशंकर विद्यार्थी अपने आदर्शों के साथ जिए और बलिदान भी हुए। आज भी मीडिया के बुनियादी आदर्श वही हैं क्योंकि उन्हीं से लोक विश्वास की शक्ति मिलती है लेकिन आज उसका संचालन राजनीति, बाजार और विज्ञान की ऐसी अदृश्य शक्तियाँ कर रही हैं जो मीडिया के सहारे मनोवैज्ञानिक, आर्थिक और बौद्धिक गुलामी का प्रचार कर रही है। भारतीय मीडिया का सबसे चिन्ताजनक पक्ष यह है कि सर्वशक्तिमान होने के दंभ के कारण उसने कभी अपना आलोचना शास्त्र और मूल्य व्यवस्था का निर्माण नहीं किया। पूरी व्यवस्था के लिए नैतिकता और आचार संहिता का आग्रह करने वाले लोगों ने किसी आत्म निरीक्षण, आत्मनियंत्रण और आम नागरिक के प्रति दायित्व बोध को क्यों नकार दिया है? अपने आलोचकों के साथ संवाद करने की इच्छाशक्ति क्यों नहीं है उनमें? सर्वशक्तिमान मीडिया अपनी चुनौतियों से डरने लगी है। समाचार के स्रोतों पर उसका एकाधिकार समाप्त हो रहा है। पूरी दुनिया में पाठकों और दर्शकों की संख्या तेजी से घटने लगी है। युवाओं में उसका प्रभामंडल तहस नहस हो रहा है। उत्तर आधुनिक मीडिया उद्योग का पुनर्गठन आवश्यक और अवश्यंभावी है। भ्रष्ट और तिरस्कृत सत्ता राजनीति तथा बाजार का साथ छोड़े बिना समाचार मीडिया की विश्वसनीयता लौटना असंभव है। 'मीडिया मीमांसा' का यह अंक मीडिया की गतिविधियों और विवादास्पद आचरण केन्द्रित है। पंडित कृष्णबिहारी मिश्र, इन्दर मल्होत्रा, एम.वी.कामथ, आनंद प्रधान, अवधेश कुमार और एन.के. सिंह जैसे विद्वानों के योगदान से यह अंक महत्वपूर्ण हो गया है।

– अच्युतानंद मिश्र